



। पैरवी ।

॥ पैरवी संवाद ॥

पब्लिक एडवोकेसी इनिशिएटिव्स फॉर राइट्स एण्ड वेल्युज इन इण्डिया (पैरवी)

o"K11 val 2

ekp&vi& 2010

इस अंक में



- ◆ श्रमिकों की आस और सरकारी प्रयास
- ◆ मज़दूर का हिस्सा
- ◆ नरेगा में भ्रष्टाचार
- ◆ सामाजिक अंकेक्षण बनाम सरकारी अमला
- ◆ नरेगा की उपलब्धियाँ
- ◆ नरेगा के बेहतर क्रियान्वयन के लिए कुछ सुझाव
- ◆ बोलिविया जलवायु परिवर्तन सम्मेलन: नष्ट होते ग्लेशियर की धरती का संदेश
- ◆ प्राचीन समय में भी था नरेगा: बुन्देलखण्ड का इतिहास
- ◆ अखबारों की सुर्खियाँ

संपादक मण्डल.....

प्रो. संजय भट्ट
अजय के. झा
विनोद कोष्टी
रजनीश

प्रिय साथियो,

गौरवपूर्ण जीवन की परिकल्पना भोजन व रोज़गार की उपलब्धता और समुचित आर्थिक सुदृढ़ता के बिना अधूरी ही होगी। यदि हम गौर करें तो पाते हैं कि दैनिक जीवन से जुड़ी प्रत्येक आवश्यकता, चाहे वह भोजन, शिक्षा, स्वास्थ्य, कपड़ा, आवास कुछ भी हो, आजीविका के स्रोत की आवश्यकता को सामने लाती है। पिछले एक लम्बे अरसे से सरकार रोज़गार के साधन मुहैया कराने की मुहिम चला रही है। तमाम कानूनों और रोज़गार उपलब्ध कराने के लिए संचालित योजनाओं के बावजूद हम पाते हैं कि देश की तकरीबन 37 प्रतिशत आबादी (तेन्दुलकर कमिटी) ग़रीबी रेखा के नीचे रह रही है। ऐसी स्थिति में इन कानूनों और योजनाओं को प्रश्ननिहित दृष्टि से देखा जाना स्वाभाविक भी है और आवश्यक भी।

भारत की अधिकांश आबादी कृषि, लघु व घरेलू उद्योगों व मज़दूरी पर आश्रित है। जब मज़दूरी की बात आती है तो वर्तमान समय में महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना स्वतः ही उससे जुड़ जाती है। सरकार की यह योजना लागू होने के बाद से ही निरंतर सुर्खियों में रही है। अब जबकि यह अपने चार वर्ष पूर्ण कर चुकी है तब यह देखना प्रासंगिक है कि यह योजना कितनी प्रभावी रही है और ग़रीब मज़दूरों के जीवन स्तर में कितना सुधार हुआ है।

कृषि को भारत में सिर्फ़ खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से ही नहीं बल्कि रोज़गार के एक बड़े साधन के रूप में भी देखा जाता है। यह देखना आवश्यक हो जाता है कि जब सरकार खाद्य सुरक्षा कानून की बात कर रही है और जलवायु परिवर्तन का संकट भी है तब कृषि की क्या स्थिति है, खासकर यह कि जलवायु परिवर्तन की बहसों में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कृषि को कितना स्थान मिल रहा है और कृषि आश्रितों पर कितना ध्यान दिया जा रहा है। इस संदर्भ में हाल ही में बोलिविया में जलवायु परिवर्तन पर हुए सम्मेलन से सामने आए तथ्यों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि अब तक इस विषय पर हुए विमर्श कितने उथले और मुख्य जड़ व प्रभावी उपायों से कितने दूर थे। भारत के संदर्भ में इस बात पर भी विचार करना प्रासंगिक है कि सरकार के विकास कार्यों से कृषि किस प्रकार प्रभावित हुई है और इन विकास कार्यों की आम-जन के लिए कितनी उपयोगिता है?

चार साल पूरे होने के बाद नरेगा अपने उद्देश्यों की किस हद तक पूर्ति कर पाया है और सरकार की विकास की अवधारणा क्या है इसे समझने का प्रयास पैरवी संवाद का यह अंक कर रहा है।

आपकी प्रतिक्रियाओं, सुझावों और सहयोग की अपेक्षा के साथ...

- संपादक मण्डल



श्रमिकों की आस और सरकारी प्रयास

- रजनीश

भारतीय व्यवस्था में 1936 से लेकर अभी तक तमाम कानून श्रमिकों को केन्द्र में रखते हुए बनाए गए हैं। राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार के लिए तमाम शासकीय योजनाएँ भी संचालित की गईं, कुछ में सुधार किये गए तो कुछ का अन्य किसी योजना/कार्यक्रम में विलयन कर दिया गया। परन्तु आज भी श्रमिक वर्ग की स्थिति कैसी है यह किसी से छुपा नहीं है। बेशक मज़दूरों में जागरूकता, अन्याय व शोषण के खिलाफ और अपने अधिकारों के लिए लड़ने की प्रवृत्ति व हौसला बढ़ा है, स्थानीय से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक के मज़दूर संगठन हैं परन्तु क्या मज़दूरों का शोषण बंद हुआ है? क्या शोषण में पर्याप्त कमी आ पाई है?

कानूनों, शासकीय योजनाओं, प्रयासों के प्रकाश में यह सवाल बचकाना लग सकता है पर शायद इतना छोटा भी नहीं है कि इसके बारे में गंभीरता से बात न की जाए। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना उचित होगा कि श्रमिक का तात्पर्य सिर्फ कुदाल हाथ में लिए, सिर पर बोझा लादे और नंगे बदन वाली तस्वीर ही नहीं है, श्रमिकों का दायरा इससे कहीं अधिक व्यापक है। इसी व्यापकता के साथ-साथ शोषण का स्वरूप भी अलग-अलग है और यह लगातार बदल रहा है।

इस संदर्भ में शासकीय योजनाओं की बात करना उपयुक्त होगा। संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार की बड़ी उपलब्धि कही जाने वाली नरेगा योजना पूर्णतः मज़दूरों की योजना है जिसने चार वर्ष पूर्ण कर लिए हैं। चार वर्ष पूर्ण कर लेने के बाद भी स्थिति यह है कि तकरीबन 30 प्रतिशत आबादी रोज़गार की तलाश में अब भी पलायन करती है। योजना आयोग की सर्वे रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2009 में मज़दूरों को यदि औसतन रूप से सबसे अधिक कहीं काम मिला है तो राजस्थान में - 68 दिन का। यानि पिछले चार वर्षों में सरकार एक वर्ष में 100 दिन का रोज़गार सभी मज़दूरों को पूरे भारत में कहीं भी सुनिश्चित नहीं कर सकी। बिहार राज्य के समस्तीपुर जिले के दो गाँवों चौथई व डूमरी में 2009 में पहली बार जॉब कार्ड बने। बिहार के ही बाँका जिले के कुछ गाँवों में तकरीबन 80 प्रतिशत लोग नरेगा में काम नहीं करना चाहते क्योंकि पिछले काम की मज़दूरी छः माह बाद तक नहीं मिली। मज़दूरी न मिलने, जॉब कार्ड पर गलत प्रविष्टियाँ होने, निर्धारित से कम मज़दूरी मिलने की कई घटनाएँ भारत के प्रत्येक राज्य में हो रही हैं। ऐसी स्थिति में यदि लोगों की सहभागिता कम हो रही है और बिहार व पश्चिम बंगाल में वर्ष 2009 में मज़दूरों को औसतन सिर्फ 26 दिन काम मिला है तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

ग्रामीण स्तर पर हाथकरघा व अन्य घरेलू उद्योगों में लगे लोगों की स्थिति तो और भी ख़राब है। अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि आपके पास उत्पादन के लिए कच्चा माल है, उत्पादन की क्षमता है, तैयार उत्पाद हैं लेकिन बेचने के लिए स्थाई और पर्याप्त बाज़ार उपलब्ध नहीं है तो आपके श्रम का कितना मूल्य है। सरकार हाथकरघा उद्योग के लिए आर्थिक सहयोग प्रदान करती है, परन्तु तैयार माल को बेचने के लिए खुले बाज़ार के नाम पर सिर्फ इतनी सुविधा प्रदान करती है कि जिला व राष्ट्रीय स्तर पर 6 से 10 दिन की एक प्रदर्शनी लगाई जाए। अचार, पापड़ जैसी रोज़ाना घरेलू उपभोग की वस्तुएँ बहुत कम लागत और मूल्य पर घरेलू उद्योगों से उपलब्ध हो सकती हैं परन्तु उसे बाज़ार तक पहुँचाने के सरकारी प्रयास अपर्याप्त हैं। नतीजतन जब यही उत्पाद निजी कंपनियों द्वारा बाज़ार में पहुँचते हैं तो कीमत तीन से चार गुना ज़्यादा होती है। लाभ निजी कंपनियों की जेब में पहुँचता है और सरकार के पास टैक्स। मूल उत्पादक की स्थिति जस की तस बनी रहती है। हालांकि इन उद्योगों के उत्पादों की एक बड़ी ख़रीददार भारत सरकार खुद है, जिसके लिए उद्योगों का शासकीय ख़रीद योजना में पंजीकृत होना ज़रूरी है परन्तु वर्तमान में निरंतर रोज़गार के लिए बढ़ते पलायन और इन उद्योगों से प्राप्त उत्पादों की बाज़ार में उपलब्धता के प्रतिशत को देखें तो इस व्यवस्था की सफलता और क्रियान्वयन प्रक्रिया पर प्रश्न खड़ा होता है।

भारत की तकरीबन 73 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है और मुख्यतः कृषि, लघु व घरेलू उद्योगों और मज़दूरी पर निर्भर है। सरकार द्वारा लघु व घरेलू उद्योगों के विकास के लिए जो योजनाएँ हैं उनमें कम कीमत पर कच्चा माल उपलब्ध कराने, उद्योग स्थापना के लिए आवश्यक धनराशि मुहैया कराने, प्रशिक्षण प्रदान करने जैसी तमाम बातों का समावेश है परन्तु उद्योग को बरकरार रखने के लिए सबसे आवश्यक तत्व “बाज़ार तक पहुँच” को सुनिश्चित करने के कोई ठोस और वृहद इंतज़ाम नज़र नहीं आते।

वर्तमान परिदृश्य में ऐसे ही कुछ तथ्य कानूनों के संदर्भ में भी हैं। यदि बाल श्रम उन्मूलन अधिनियम को ही देखा जाए तो इसके क्रियान्वयन में काम में लगे बच्चों को काम से हटाकर शिक्षा की ओर ले जाना बहुत महत्वपूर्ण व

सारथक कदम है। जो लोग बच्चों से काम कराते हैं उन पर दण्डात्मक कार्यवाही करना भी कानून के क्रियान्वयन में उपयोगी है। तमाम सामाजिक संस्थाएँ इस दिशा में कार्यरत हैं। फिर भी पूरे देश के किसी भी हिस्से में बच्चे काम करते दिख जाएंगे। सवाल यह है कि बच्चे आखिर काम क्यों रहे हैं? जवाब आसान है - सरकार के लिए वे सिर्फ बच्चे हैं पर उनके अपने परिवार के लिए कमाऊ सदस्य। यदि 8-10 साल का बच्चा कहीं काम कर रहा है तो निश्चित ही वह मज़े के लिए नहीं कर रहा बल्कि अपने परिवार की आर्थिक आवश्यकता को पूरा करने में सहयोग कर रहा है। यह इस बात का सबूत है कि उसके परिवार के पास रोज़गार के पर्याप्त साधन नहीं हैं और न ही शासकीय योजनाओं तक पहुँच।

न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम पर भी बात करना लाज़िमी होगा। सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम कृषि मज़दूरी का औसत यदि 100 रुपये भी मान लिया जाए तो वर्ष भर में एक व्यक्ति 36,500 रुपये कमाता है। नरेगा में 100 दिन के काम का प्रावधान है यानि 10,000 रुपये सालाना। अब यदि सरकार के आंकड़ों को ही दृष्टिगत रखते हुए यह मान लें कि प्रतिदिन भोजन के लिए औसतन 20 रुपये की आवश्यकता होती है तो साल भर में 7300 रुपये भोजन पर खर्च होते हैं। बाकी बचे 2700 से क्या वर्ष भर में स्वास्थ्य, कपड़े, आवास, शिक्षा व अन्य मूलभूत सुविधाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। खासकर तब जबकि न्यूनतम मज़दूरी वर्ष में एक बार बढ़ी हो और उपभोग्य वस्तुओं की कीमत चार बार।

सरकार की ताज़ातरीन जानकारी के अनुसार भारत की तकरीबन 37 प्रतिशत आबादी ग़रीबी रेखा के नीचे रहती है (तेन्दुलकर कमिटी)। सरकार का यह स्वीकार करना ही यह स्पष्ट करता है कि ग़रीबों के आर्थिक सुधार के लिए लागू की गई तमाम योजनाओं की सफलता कितनी है और योजनाओं व कानूनों के बीच कितना सामंजस्य है। यहाँ यह भी ध्यान रहे कि सक्सेना कमिटी और अर्जुन सेन गुप्ता

कमिटी की बात मानें तो यह संख्या दो-गुना तक बढ़ जाती है।

यह तथ्य भी विचारणीय है कि एक तरफ तो सरकार ग़रीबों/श्रमिकों के जीवनस्तर में सुधार के लिए नित नई योजनाओं को अंजाम देती आई है वहीं दूसरी ओर उन्हीं को निशाना भी बनाती है। जल विद्युत परियोजनाओं, बड़े बांधों, विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों के नाम पर जो विकास अब तक किया गया है उसमें विस्थापित हुए लोगों का आज तक पूर्णतः पुनर्वास नहीं हो सका है। मैंगलौर, उड़ीसा, झारखण्ड, उत्तराखण्ड, मध्यप्रदेश व और भी कई स्थानों पर विकास परियोजनाओं के चलते आज भी विस्थापन ज़ारी है। इन विस्थापितों के सामने रोज़गार की समस्या पहले से नहीं है बल्कि सरकार निर्मित है। जिनके पास अपने जीवन-यापन के लिए पर्याप्त कृषि भूमि थी या वन संपदा व अन्य प्राकृतिक संसाधनों से जीवन-यापन की सुविधा थी उनसे वह भी छीन ली जा रही है और बदले में आश्वासन के सिवा कुछ नहीं मिलता। नतीजतन जो पहले कमतरी में ही सही पर आत्मनिर्भर थे आज वह भी मज़दूरी पर निर्भर हैं। वहीं विशिष्ट औद्योगिक क्षेत्रों के नाम पर जो उद्योग खड़े किये गए हैं उन्होंने अपने आस-पास के वातावरण को इतना दूषित कर दिया है कि ज़मीन की उर्वरा शक्ति ख़त्म हो गई है, पानी ज़हरीला हो गया है जिसके परिणामस्वरूप लोगों की फसल, पशुधन, स्वास्थ्य, रोज़गार, आत्मनिर्भरता सब संकट में है।

दूसरी ओर महानगरों में निर्माण और विकास कार्यों के लिए ग्रामीण क्षेत्रों से जो मज़दूर कम पारिश्रमिक पर लाए जाते हैं उनके लिए

सरकार की नीति क्या है? काम ख़त्म होने के बाद उनके लिए रोज़गार की क्या व्यवस्था की जाती है? काम कराने के बाद उन्हें छोड़ दिया जाता है और अपेक्षा की जाती है कि वे वापस अपने गृहनगर चले जाएँ जहाँ से कि वे अपने रोज़गार/मज़दूरी के संसाधनों को छोड़कर आए हैं। प्रश्न यह उठता है कि क्या वे वापस जाकर पुनः वो रोज़गार पा सकेंगे? दिल्ली में झुग्गी में रहने वालों पर आरोप लगाया गया कि वे शहर को, यमुना को गंदा कर रहे हैं, पर इस बात पर विचार नहीं किया गया कि उनमें से अधिकांश विकास कार्यों के लिए सस्ते पारिश्रमिक पर आयातित किये गए मज़दूर हैं जिनकी व्यवस्था करना सरकार का नैतिक दायित्व है। आज जब कॉमनवेल्थ खेलों के लिए फिर से तमाम मज़दूर दिल्ली में हैं तब भी उनके रहने की व्यवस्था पर सरकार की कोई चिंता नहीं है। यही हथ एशियाड खेलों के समय भी हुआ था। यह भी एक बड़ा सवाल है कि महानगरों में रह रहे मज़दूरों/झुग्गीवासियों के रोज़गार के लिए क्या ठोस कदम उठाए गए हैं।

शासकीय योजनाओं से घिरे श्रमिक वर्ग की वर्तमान स्थिति को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार की विकास की अवधारणा में कहीं कमी है जिसके कारण अंतिम व्यक्ति, जिसके पास अपने श्रम के अलावा कुछ नहीं है, तक लाभ सही तरीके से नहीं पहुँच पा रहा है।

□





मजदूर का हिस्सा

- जावेद खान

चार साल पहले देश के गरीब ग्रामीण परिवारों को सालभर में 100 दिन का रोजगार मुहैया कराने के लिए 2006 में केन्द्र सरकार एक महत्वाकांक्षी योजना लेकर आई जिसमें मजदूरों को काम मांगने का अधिकार दिया गया। इस योजना को नाम दिया गया - राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना। सरकार की यह महत्वाकांक्षी योजना जिम्मेदार अधिकारियों/कर्मचारियों की कमी और भ्रष्टाचार के चलते पूर्णतः सफल नहीं हो सकी। कुछ राज्यों में आंशिक सफलता अवश्य मिली है लेकिन कई राज्य ऐसे भी हैं जहाँ इस योजना का लाभ जिन्हें मिलना चाहिए उन्हें नहीं मिला। बहरहाल सफलता और असफलता के बीच नरेगा योजना से अधिनियम बना और बीते सालों में इसके तहत पूरे देश में 312 करोड़ परिवारों को रोजगार दिया गया जिससे 122.45 करोड़ कार्यदिवस उत्पन्न किये गए। इन वर्षों में देश भर में करीब 7.32 लाख परिसम्पत्तियों का निर्माण किया गया। इन आंकड़ों के मुताबिक योजना की उल्लेखनीय उपलब्धि रही है, परंतु इस उपलब्धि को और व्यापक बनने से रोकने वाली क्या वजहें रहीं, इसके लिए योजना क्रियान्वयन के विभिन्न पहलुओं को जानना बहुत आवश्यक है।

महिलाओं की सहभागिता

नरेगा अधिनियम के राष्ट्रीय बुलेटिन के अनुसार कुल कार्यदिवसों में से 50 प्रतिशत महिलाओं के हिस्से में आए व 29.9 प्रतिशत दलित तथा 21.8 प्रतिशत आदिवासियों की भागीदारी रही। इन आंकड़ों पर नज़र डाली जाए तो लगता है कि अधिनियम देश में सफलतापूर्वक काम कर रहा है परंतु ज़मीनी हकीकत कुछ और ही बयान करती है।

देश के अधिकांश राज्य महिलाओं को रोजगार देने के मामले में काफी पीछे हैं। बिहार, झारखण्ड, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में तो स्थिति बहुत ही गंभीर है। इनके अतिरिक्त अरुणाचल प्रदेश, असम, हरियाणा, पंजाब तथा जम्मू-कश्मीर में नरेगा में महिलाओं की हिस्सेदारी 30 प्रतिशत से भी कम है जबकि पूरे देश की बात करें तो वर्ष 2008-09 में नरेगा के अंतर्गत महिलाओं की भागीदारी 47 प्रतिशत थी जो कि वर्ष 2009-10 में बढ़कर 51 प्रतिशत हो गई है। दक्षिणी राज्य इस मामले में काफी आगे हैं। फिलहाल केरल, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश और कर्नाटक में क्रमशः 83, 78, 58 और 45 प्रतिशत हिस्सेदारी महिला श्रमिकों की है। इन राज्यों को छोड़ दिया जाए तो शेष राज्य नरेगा में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए गंभीर नज़र नहीं आ रहे हैं। उत्तर प्रदेश की स्थिति सबसे अधिक चिंताजनक है। यहाँ वर्ष 2008-09 में नरेगा में महिलाओं की हिस्सेदारी 19 प्रतिशत थी जबकि वर्तमान में यह 17 प्रतिशत है।

कार्य उपलब्धता

नरेगा में 15 दिन के अंदर काम उपलब्ध कराने का प्रावधान होने के बावजूद कितने दिनों में काम मिल पाता है इसे देखना भी आवश्यक है। मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के देवागुहारी गाँव में ग्रामीणों द्वारा काम मांगे जाने के लगभग पाँच माह बाद तक भी उन्हें काम नहीं दिया गया। इस घटना के संबंध में मध्यप्रदेश दलित आदिवासी संघ के परमसुख का कहना है कि मजदूरों ने जब काम न देने के बदले में बेरोजगारी भत्ते की मांग की तो ग्राम पंचायत के सरपंच और विकाखण्ड के मुख्य कार्यपालन अधिकारी ने उन्हें डरा-धमका कर कोरे कागज़ पर उनके अंगूठों के निशान ले लिए। जिससे वे सिद्ध कर सकें कि मजदूरों ने काम की मांग ही नहीं की।

इसके अलावा भोजन का अधिकार अभियान की रिपोर्ट के अनुसार मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले के मेघनगर विकाखण्ड के गाँव मदरानी और अगासिया में वर्ष 2009 में सिर्फ 15 से 20 दिन ही काम दिया गया। ग्रामीणों को काम न मिलने के कारण अपनी आजीविका के लिए गुजरात और राजस्थान पलायन करना पड़ा। इसके जवाब में जिलाधीश जगदीश शर्मा पलायन की वजह अधिक मजदूरी पाने की लालसा बताते हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार अक्टूबर से दिसम्बर 2009 तक झाबुआ जिले में हुई 43 बच्चों की मौत का कारण भी नरेगा के तहत मजदूरी न दिया जाना है। अभियान के अनुसार इन बच्चों की मौत भूख से हुई है जिसका सीधा संबंध व्यक्ति के रोजगार से है। यदि ग्रामीणों को समय पर रोजगार और मजदूरी दी जाएगी तो उनके बच्चे भूख से नहीं मरेंगे। यह स्थिति सिर्फ मध्यप्रदेश की ही नहीं है बल्कि पूरे देश में अमूमन यही हालात हैं।

बेरोजगारी भत्ता

अधिनियम का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण परिवारों को उस समय काम देना है जब उन्हें काम की ज़रूरत हो। अधिनियम में व्यवस्था है कि जब मजदूर काम की मांग करे तो उसे काम दिया जाए और यदि काम मांगने के बाद भी काम नहीं दिया जाता तो उस स्थिति में उसे बेरोजगारी भत्ता दिया जाए लेकिन नरेगा की अब तक की स्थिति पर नज़र डाली जाए तो बेरोजगारी भत्ता दिये जाने की स्थिति नगण्य है जबकि ऐसे प्रकरण बड़ी संख्या में हैं जहाँ मजदूरों द्वारा काम की मांग किये जाने के बावजूद उन्हें काम नहीं दिया गया।



- ◆ पश्चिम बंगाल में वर्ष 2008-09 में 96.66 लाख परिवारों में से सिर्फ 30.23 लाख परिवारों को ही काम मिल सका। राज्य में नरेगा में काम करने वाले परिवारों को औसतन सिर्फ 26 दिन ही काम मिला है।
- ◆ उड़ीसा में भी वर्ष 2007-08 में औसतन 57 दिन का काम दिया गया था जो कि 2008-09 में 36 दिन ही रह गया है।
- ◆ केरल में वर्ष 2008-09 में नरेगा के अंतर्गत काम के दिनों का औसत 22 दिन ही रहा।
- ◆ बिहार में परिवारों को औसतन 26 दिन काम मिला।
- ◆ गुजरात के कई तालुका ऐसे हैं जहाँ ग्रामीणों को काम मिलने का इंतज़ार करते हुए एक साल से अधिक समय बीत गया है।
- ◆ जम्मू-कश्मीर के अनंतनाग जिले के बिजबेहरा विकासखण्ड में 9000 जॉबकार्ड जारी किये गए थे जिनमें से सिर्फ 1500 परिवारों को ही काम दिया गया।
- ◆ उत्तरप्रदेश में सिर्फ 44 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों को ही जॉब कार्ड जारी किए गए हैं। बीपीएल परिवारों को भी राज्य रोज़गार देने में सफल नहीं हुआ। राज्य में मात्र एक चौथाई बीपीएल परिवारों को ही नरेगा में रोज़गार मिल सका है।

भुगतान और व्यवस्था

नरेगा के अंतर्गत काम करने वाले मज़दूरों के मज़दूरी भुगतान में होने वाले भ्रष्टाचार को रोकने के लिए केन्द्र सरकार ने वर्ष 2008 में व्यवस्था को बदलकर डाकघर या बैंक के बचतखातों से मज़दूरी का भुगतान करने की व्यवस्था लागू की थी। लेकिन यहाँ भी ढाक के तीन पात। नरेगा में होने वाला भ्रष्टाचार तो रुका नहीं उल्टे इस व्यवस्था ने मज़दूरों की परेशानियों को और भी बढ़ा दिया। अधिकांश राज्यों में डाकघर और बैंक मज़दूरी का समय पर भुगतान करने में तकरीबन असफल रहे हैं।

मध्यप्रदेश के 17 ग्रामीण संगठनों द्वारा किये गए एक अध्ययन के अनुसार सर्वे किये गये लोगों में से 17 प्रतिशत लोग ही अपने नज़दीकी डाकघर में खाता खुलवाने में सफल हो सके हैं। राज्य के डिन्डोरी जिले के छपर गाँव के मज़दूरों को तो मज़दूरी के लिए 10 माह से ज्यादा इंतज़ार करना पड़ा। विकासखण्ड के मुख्य कार्यपालन अधिकारी व्ही.टी. शुक्ला का कहना था कि मूल्यांकन रिपोर्ट समय पर न भेजे जाने के कारण भुगतान में देरी हुई। सभी गाँवों के आस-पास बैंक अथवा डाकघर न होने के कारण मज़दूरों को अपनी मज़दूरी प्राप्त करने के लिए काफी दूर-दूर तक जाना पड़ता है। कई जगह 5 से 7 कि.मी. दूर तक कोई डाकघर या बैंक उपलब्ध नहीं है।

तमिलनाडु में भुगतान व्यवस्था

तमिलनाडु सरकार ने मज़दूरी का भुगतान मज़दूरों की इच्छा पर छोड़ा हुआ है। लाभार्थी बैंक से मज़दूरी का भुगतान चाहता है तो बैंक द्वारा, डाकघर से चाहे तो डाकघर द्वारा और कई बार नकद। यहाँ बैंकों की तुलना में डाकघर तक मज़दूरों की पहुँच ज्यादा है इसलिए डाकघर द्वारा मज़दूरी का भुगतान करना अधिक सुविधाजनक है। जबकि नकद भुगतान के लिए एक निगरानी समिति बनाई जाती है और उसके सामने ही भुगतान किया जाता है, जिससे नकद राशि के भुगतान में भ्रष्टाचार को रोका जा सके। तमिलनाडु सरकार के अनुसार यदि मज़दूरी का भुगतान बैंकों द्वारा किया जाना अनिवार्य कर दिया जाए तो यह कई लाभार्थियों को मुश्किल में डाल सकता है।

यह सिर्फ एक जिले या प्रदेश की बात नहीं है अमूमन देश के सभी राज्यों में हालात एक जैसे ही हैं। मज़दूरी का भुगतान समय पर करने में अब तक सभी राज्य असफल रहे हैं।

- ◆ पश्चिम बंगाल में स्थिति थोड़ी-सी बेहतर नज़र आती है। यहाँ मज़दूरी का भुगतान 15 से 20 दिन में कर दिया जाता है।
- ◆ उड़ीसा में बैंकों द्वारा मज़दूरी के भुगतान में एक माह तथा डाकघर द्वारा 80 से 90 दिन का समय लिया जाता है।
- ◆ जम्मू-कश्मीर में भी बैंक एक माह से ज्यादा का समय ले लेते हैं।
- ◆ हिमाचल प्रदेश मज़दूरी के भुगतान में देरी के मामले में सबसे ऊपर है, यहाँ मज़दूरों द्वारा मज़दूरी का भुगतान 3 से 4 माह में किये जाने की शिकायत की गई है जबकि गतवर्ष में नरेगा के सफल क्रियान्वयन हेतु हिमाचल प्रदेश को सम्मानित किया गया है।
- ◆ मणिपुर में कुल मज़दूरी भुगतान का 56 प्रतिशत और मिज़ोरम में मात्र 35 प्रतिशत भुगतान ही बैंकों अथवा डाकघरों से किया जाता है।
- ◆ आन्ध्रप्रदेश का उदाहरण लिया जाए तो फरवरी 2009 में जहाँ 100 प्रतिशत मज़दूरी का भुगतान बैंक अथवा डाकघरों द्वारा किया गया, वहीं मार्च 2009 में यह घटकर 77 प्रतिशत ही रह गया।

इससे पता चलता है कि बैंकों या डाकघरों से मज़दूरी का भुगतान करने में कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।



क्यों होती है भुगतान में देरी

बैंक/डाकघरों की दूरी, स्टाफ की कमी, बड़ी धनराशि रखने की क्षमता न होना आदि कई कारण हैं, जिनकी वजह से मजदूरी के भुगतान में देरी हो रही है। इसके अलावा ग्राम पंचायत स्तर पर तकनीकी स्टाफ की कमी और पंचायत प्रतिनिधियों की उदासीनता के कारण भी मस्टर रोल का समय पर मूल्यांकन नहीं हो पाता, यह भी मजदूरी के भुगतान में देरी होने का एक बड़ा कारण है। कई राज्यों में पंचायत स्तर पर तकनीकी कर्मचारी न के बराबर हैं। उदाहरण के लिए उड़ीसा में एक

पूरे विकासखंड के लिए सिर्फ एक जूनियर इंजीनियर ही नियुक्त है, वहीं हिमाचल प्रदेश में एक तकनीकी असिस्टेंट 3 पंचायतों को और एक जूनियर इंजीनियर 7 पंचायतों को देख रहा है। लगभग हर राज्य कर्मचारियों की कमी से जूझ रहा है। ये तकनीकी कर्मचारी काम का भार ज्यादा होने का बहाना लेकर अपना पल्ला झाड़ लेते हैं और गरीब मजदूर अपनी मजदूरी के लिए तरसता रहता है। बैंक अथवा डाकघरों से भुगतान में देरी का एक बड़ा कारण अधिकांश बैंकों की शाखाओं का नेट बैंकिंग से जुड़ा न होना भी है। डाकघरों में नेट बैंकिंग की सुविधा का अभाव है। नेट बैंकिंग न होने के कारण भी भुगतान में देरी हो रही है। □

नरेगा में भ्रष्टाचार

- जावेद खान

राज्यों द्वारा नरेगा के लिए आवंटित राशि के उपयोग पर अगर नज़र डाली जाए तो उसमें भी राज्यों का प्रदर्शन बहुत अच्छा नजर नहीं आता। कई राज्य नरेगा के तहत प्राप्त राशि का पूरा उपयोग करने में असफल रहे हैं। साथ ही कार्यों की पूर्णता के मामले में भी राज्य सफल नहीं हुए।

आन्ध्रप्रदेश में बीपीएल परिवारों को अधिक से अधिक संख्या में नरेगा में पंजीकृत करने का प्रयास किया गया, राज्य में सामाजिक अंकेक्षण कराए जाने की व्यवस्था है, कर्मचारियों को अतिरिक्त प्रशिक्षण दिया जाता है, लेकिन इस सब के बावजूद कई जिले कार्य पूर्णता के मामले में पिछड़े हुए हैं। विशाखापट्टनम में नरेगा के अंतर्गत शुरू किए गए कार्यों में से 20 प्रतिशत, नलगांडा में 21 प्रतिशत, श्रीकाकुलम और मोडक में 24 प्रतिशत, अदीलाबाद व मेहबूबनगर में 25 प्रतिशत कार्यों को ही पूरा किया गया है। उड़ीसा को योजना की शुरूआत से अक्टूबर 2009 तक नरेगा के लिए 655 करोड़ रुपये आवंटित किए जा चुके हैं। जिनमें से सिर्फ आधे (312 करोड़) रुपयों का ही उपयोग किया जा सका है।

मिज़ोरम में वर्ष 2008-09 में 68.73 प्रतिशत राशि का उपयोग किया गया, पांडिचेरी में 580.23 करोड़ में से मात्र 164.74 करोड़ रुपये का ही उपयोग किया जा सका है। पश्चिम बंगाल में 1550 करोड़ में से 940.38 करोड़ और पंजाब में नवंबर 2009 तक 200 करोड़ में से 60.77 करोड़ रुपये का ही उपयोग किया गया। उत्तर प्रदेश भी नरेगा की राशि का उपयोग करने के मामले में पीछे है। वर्ष 2008-09 में राज्य में 4593.31 करोड़ रुपये में से 3568.88 करोड़ रुपये खर्च किए गए। उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले में आवंटित राशि के 19 प्रतिशत का ही उपयोग किया गया। नरेगा के तहत प्राप्त राशि का उपयोग करने में सबसे पीछे रहने वाले जिलों की सूची में अंबेडकर नगर, देवरिया, जीबी नगर, कुशीनगर और मुरादाबाद (क्रमशः 19, 18, 14, 14 और 14 प्रतिशत) भी शामिल हैं।

उड़ीसा में एक और तथ्य सामने आया है, यहाँ पंचायत प्रतिनिधि नरेगा के तहत मजदूरों को काम देने में रुचि नहीं रखते। इसका कारण खेती को

अधिक प्राथमिकता देना है। यदि मजदूर नरेगा में काम करेगा तो कृषि कार्यों के लिए मजदूर नहीं मिलेंगे। काम को पूरा होने से पहले ही रोक दिए जाने के मामले भी उड़ीसा में प्रकाश में आए हैं। अकेले गंजम जिले में ही 423 काम पूरे होने से पहले रोक दिए गए। कार्य पूर्ण करने के मामले में उत्तर प्रदेश की स्थिति भी ठीक नहीं है। राज्य के चित्रकूट जिले में सिर्फ 4 प्रतिशत कार्य ही पूर्ण किए गए। इसी तरह कौशाम्बी में 6 प्रतिशत, बागपत में 5 प्रतिशत, काशीराम नगर में 3 प्रतिशत भी कार्य पूर्ण करने में उदासीनता नज़र आती है। पूरे राज्य की स्थिति पर नज़र डाली जाए तो यहाँ 2.31 लाख कामों में से मात्र 37 प्रतिशत काम ही पूरे हुए हैं। उत्तर प्रदेश में कार्य पूर्णता का प्रतिशत अन्य राज्यों की तुलना में काफी कम है। जबकि राज्य सरकार ने नरेगा की राशि का पूरा उपयोग करने और राज्य के वंचित समुदायों को योजना का लाभ देने के लिए 11 उपयोजनाओं को नरेगा में शामिल किया है। लेकिन योजना का क्रियान्वयन ठीक ढंग से करने में सरकार की सफलता का प्रतिशत असफलता से कम ही है।

ग्रामीण मजदूरों को ज़रूरत के वक़्त काम देने की गारंटी देने वाला रोज़गार गारंटी अधिनियम मजदूरों को तो ज्यादा लाभ नहीं दे सका लेकिन इससे जुड़े हुए पंचायत प्रतिनिधियों, नेताओं और अधिकारी-कर्मचारियों के यह अधिनियम एक दुधारू गाय ज़रूर बन गया है। केन्द्रीय रोज़गार गारंटी परिषद द्वारा मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार और राजस्थान से इकट्ठे किए गए आंकड़ों के अनुसार इन राज्यों में बड़े पैमाने पर नरेगा की राशि का गबन किया गया है।



पंचायतों द्वारा झूठे बिल, जॉब कार्ड में ग़लत जानकारी भरना और फ़र्जी फ़र्म के नाम पर आबंटित राशि का आहरण बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। सीएजी ने भी अपनी रिपोर्ट में पंचायतों में नरेगा के अंतर्गत होने वाले भ्रष्टाचार और अनियमितताओं की ओर इशारा करते हुए सही अंकेक्षण करने की बात कही है। इससे सिद्ध होता है कि पंचायतों द्वारा नरेगा का उपयोग गरीब-वंचित परिवारों के लाभ के लिए नहीं वरन अपनी जेबें भरने के लिए किया जा रहा है। नरेगा में होने वाले इस भ्रष्टाचार में जनपद पंचायत के मुख्य कार्यपालन अधिकारी से लेकर तकनीकी स्टाफ, सरपंच और पंचायत/रोज़गार सेवक तक शामिल हैं। पंचायतों द्वारा अधिनियम की खामियों का फ़ायदा उठाकर राशि का हनन करना आम बात हो गई है। वर्ष 2010 के लिए सरकार द्वारा नरेगा को 60 हजार करोड़ रुपये की राशि का आवंटन किया गया है। जिसमें से 60 प्रतिशत राशि यानि 36 हजार करोड़ रुपये मज़दूरी पर और शेष 40 प्रतिशत राशि यानि 24 हजार करोड़ रुपये सामग्री पर खर्च करने का अनुपात है जिसमें से बहुत बड़ी राशि के गबन की अपार संभावना है। एक रिपोर्ट के मुताबिक सरकार को मध्यप्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में लगभग 200 करोड़ रुपये व छत्तीसगढ़ में 50 करोड़ रुपये की हानि है। नरेगा की राशि के गबन के मामले में राजस्थान सबसे आगे है। यहाँ नरेगा को प्राप्त राशि में से 700 करोड़ रुपये का गबन किया गया। ऐसा नहीं है कि जिन राज्यों का ज़िक्र हमने किया है, भ्रष्टाचार और अनियमितताएँ सिर्फ़ इन्हीं राज्यों में हैं, बस इन राज्यों में अनियमितताओं का प्रतिशत अधिक है।

राजस्थान में नरेगा की राशि के गबन के सबसे ज़्यादा मामले जोधपुर जिले में सामने आए हैं। राजस्थान में योजना के प्रथम वर्ष, वर्ष 2006 में अनियमितता का एक भी मामला प्रकाश में नहीं आया था, वहीं वर्ष 2007 में यह आँकड़ा 54 पहुँच गया और इस वर्ष फरवरी माह तक अनियमितताओं के मामलों की संख्या 300 को पार चुकी है। ये सारे मामले पंचायत

प्रतिनिधियों के विरुद्ध दर्ज किए गए हैं। कुछ शिकायतें कलेक्टर के खिलाफ़ भी दर्ज की गई हैं। राजस्थान सरकार के ग्रामीण विकास व पंचायती राज्य मंत्री भरत सिंह का कहना है कि कुछ जिलाधीशों के विरुद्ध जाँच भी की जा रही है। बात सिर्फ़ राजस्थान की नहीं है मध्यप्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़ में भी अमूमन यही हालात हैं। अप्रैल 2009 से मार्च 2010 तक मध्यप्रदेश में 84, बिहार में 79 और छत्तीसगढ़ में 281 शिकायतें दर्ज की गई हैं। मध्यप्रदेश में नरेगा कार्यक्रम की मुख्य कार्यपालन अधिकारी रश्मि अरुण शामी मानती हैं कि प्रदेश में नरेगा सही तरीके से अमल में नहीं लाया जा सका है। लेकिन सफ़ाई के तौर पर उनका कहना है कि इसमें सब कुछ ग़लत भी नहीं है, अधिनियम बहुत बड़ी जनसंख्या पर लागू किया गया है। इसलिए इसके सही और अनियमिततारहित होने में समय लगेगा।

नरेगा में अनियमितताओं और शिकायतों के मामले में उत्तरप्रदेश पहले स्थान पर है। इसके बाद मध्यप्रदेश दूसरे और राजस्थान तीसरे स्थान पर हैं। ग्रामीण विकास मंत्रालय को पूरे देश से 1010 शिकायतें मिली हैं। ये सभी शिकायतें मुख्यतः मज़दूरी भुगतान में देरी, भ्रष्टाचार और जॉबकार्ड जारी न किए जाने से संबंधित हैं। इनमें से 337 शिकायतें अकेले उत्तरप्रदेश से प्राप्त हुई हैं। इसके बाद मध्यप्रदेश से कुल 158 और राजस्थान से 138 शिकायतें मंत्रालय को प्राप्त हुईं। शिकायतों के मामले में केरल सबसे नीचे है। यहाँ से सिर्फ़ एक शिकायत मंत्रालय के पास पहुँची है। जो किसी भी राज्य की तुलना में सबसे कम है। बहरहाल देश का कोई भी राज्य शिकायतों से अछूता नहीं है। वर्ष 2009 में 19 राज्यों से कुल 242 शिकायतें प्राप्त हुईं। इनमें भी उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश व राजस्थान क्रमशः पहले, दूसरे व तीसरे स्थान पर थे। उत्तरप्रदेश से 100, मध्यप्रदेश से 37 और राजस्थान से 25 शिकायतें दर्ज की गई थी।

इस मामले में ग्रामीण विकास मंत्रालय के अतिरिक्त सचिव और वित्तीय सलाहकार

अरविन्द मायाराम का कहना है कि किसी राज्य से सबसे ज़्यादा शिकायतें मिलना प्रथम दृष्टया उस राज्य में योजना को सही ढंग से अमल में न लाया जाना प्रदर्शित करती हैं लेकिन यह आवश्यक नहीं है। यह योजना के बड़े पैमाने पर लागू होना, नागर समाज संगठनों की सक्रियता और नागरिकों के जागरूक होने को भी दर्शाती हैं। उनके अनुसार जिस राज्य में नरेगा के तहत परियोजनाएँ अधिक संचालित होंगी वहाँ से शिकायतें भी अधिक मिलेंगी और जहाँ परियोजनाओं की संख्या कम होगी वहाँ शिकायतें भी कम होंगी।

उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में नरेगा के अंतर्गत 5,00,000 परियोजनाएँ संचालित हैं जबकि राजस्थान में 1,69,224 परियोजनाएँ, इसलिए यहाँ से शिकायतें अधिक मिल रही हैं। जबकि केरल में सिर्फ़ 43,000 परियोजनाएँ ही चल रही हैं। इस प्रकार ग्रामीण विकास मंत्रालय के आर्थिक सलाहकार और अतिरिक्त सचिव अरविन्द मायाराम नरेगा के तहत अधिक परियोजनाओं को संचालित करने की आड़ में नरेगा को सही तरीके से अमल में लाने में अपनी असफलता और राज्यों द्वारा की जा रही अनियमितताओं को छुपाने की कोशिश कर रहे हैं। उनकी मानें तो ग़लती वही करेगा जो कुछ काम करेगा, जो काम ही नहीं करेगा उसके लिए क्या ग़लत और क्या सही!

इस प्रकार के ग़ैर-ज़िम्मेदाराना जवाब देकर सच्चाई से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। ये सही है कि जहाँ काम अधिक होगा, नागरिक जागरूक होंगे, नागर समाज संगठन सक्रिय होंगे वहाँ अनियमितताएँ होने पर शिकायतें मिलेंगी। किसी भी कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए प्रतिक्रियाओं का मिलना एक सकारात्मक पक्ष है। मंत्रालय को चाहिए कि वह इन शिकायतों को गंभीरता से ले और इन्हें दूर करने का प्रयास करे न कि बहानेबाज़ी कर अपना पल्ला झाड़ने की कोशिश। मज़ेदार बात तो यह है कि इन शिकायतों के निवारण के संबंध में किसी अधिकारी का बयान आना बाकी है। उस वक्त का हमें इंतज़ार रहेगा। □



सामाजिक अंकेक्षण बनाम सरकारी अमला

पारदर्शिता, सहभागिता, प्रतिबद्धता

- रजनीश

मनरेगा जब नरेगा था - यानि इसकी शुरूआत से ही पारदर्शिता चर्चा का एक अहम बिंदु रहा है। नरेगा में पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए सामाजिक अंकेक्षण (Social Audit) जैसी महत्वपूर्ण प्रक्रिया का प्रावधान रखा गया है। निश्चित ही नरेगा के क्रियान्वयन से संबंधित अधिकारियों/प्रतिनिधियों को जवाबदेह बनाने के लिए सामाजिक अंकेक्षण एक उचित मार्ग है परंतु उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि सामाजिक अंकेक्षण से निकले तथ्यों पर क्या कार्यवाही की गई और वह कार्यवाही कितनी प्रभावी रही।

विगत चार वर्षों में देश के सभी हिस्सों में सामाजिक संस्थाओं के सहयोग से व कई बार सामाजिक संस्थाओं/संगठनों द्वारा स्वतंत्र रूप से भी कई सामाजिक अंकेक्षण किये गए। आंध्रप्रदेश में राज्य सरकार द्वारा कराए गए सामाजिक अंकेक्षणों में दोषियों के विरुद्ध उल्लेखनीय कार्यवाही करते हुए राशि की भरपाई करने का उन्हें दण्ड दिया गया। वहीं राजस्थान में मजदूर किसान शक्ति संगठन की सक्रियता और ज़ोर के कारण दोषियों के खिलाफ कार्यवाही तो हुई परंतु बड़े पैमाने पर नहीं हो सकी। ठीक इसी प्रकार उड़ीसा में वर्ष 2008 में नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ रूरल डेवलपमेंट द्वारा विभिन्न नागर समाज संस्थाओं के साथ मिलकर श्रृंखलाबद्ध रूप से आयोजित किये गए सामाजिक अंकेक्षणों से निकले तथ्यों पर प्रशासन ने कार्यवाही करने का आश्वासन तो दिया परंतु एक वर्ष से भी अधिक समय बीत जाने पर भी कोई कार्यवाही नहीं की गई। मई 2008 व जनवरी 2009 में झारखण्ड के पलामू व मुधुपर में किये गए सामाजिक अंकेक्षणों में पाए गए दोषियों के विरुद्ध भी सरकार ने कोई ठोस कार्यवाही नहीं की।

सामाजिक अंकेक्षण में ग्रामीणों के साथ-साथ नागर समाज संस्थाओं की एक महत्वपूर्ण भूमिका है परंतु सरकार का यह रवैया दोनों का ही सामाजिक अंकेक्षण की प्रक्रिया/व्यवस्था में विश्वास कमजोर कर रहा है। उड़ीसा के विद्युत मोहन्ती, जिन्होंने कोरापूत जिले में तमाम सफल सामाजिक अंकेक्षणों को अंजाम दिया है, का कहना है कि “लोग अब थक चुके हैं और निराश हो चुके हैं, क्योंकि सामाजिक अंकेक्षणों में उनके द्वारा उठाए गए मुद्दों पर सरकार ने कोई कदम नहीं उठाया।”

सामाजिक अंकेक्षण दलों पर हुए हमले एक और ही कहानी बयान करते हैं। अंकेक्षण कार्यकर्ताओं पर हमले होना, उनके साथ दुर्व्यवहार होना एक आम बात

“ठेकेदारों, क्रियान्वयन अधिकारियों और उनके किराये के गुण्डों द्वारा लोगों और कार्यकर्ताओं पर जानलेवा हमले किये जाते हैं और सामाजिक अंकेक्षण के तथ्यों पर प्रशासन द्वारा कोई कार्यवाही नहीं की जाती।”

- राजकिशोर मिश्र, सप्रीम कोर्ट सलाहकार, उड़ीसा

हो गई है जिस पर सरकार आँख-कान बंद किये बैठी है। ललित मेहता, सोमय गगरई, नारायण हरेका, लांग्टुक फांको जैसे कई सक्रिय कार्यकर्ता, जिनका कि सामाजिक अंकेक्षण की प्रक्रिया पर विश्वास था और जो उसे और भी सुदृढ़ करने में सतत प्रयत्नशील थे, अपनी जान से हाथ धो बैठे पर उनके न्याय की कार्यवाही अब तक लंबित है। इसके अलावा सामाजिक अंकेक्षण कार्यकर्ताओं पर अधिकारियों, पंचायत प्रतिनिधियों, ठेकेदारों और उनके किराये के गुण्डों द्वारा हमला किये जाने की तो तमाम घटनाएं प्रकाश में हैं जिन पर प्रशासन द्वारा अंगुली तक नहीं हिलाई गई। पिछले एक वर्ष में सामाजिक संस्थाओं और लोगों की सहभागिता में आंशिक कमी दर्ज की गई है। इसकी वजह बताते हुए राजकिशोर मिश्र (खाद्य सुरक्षा पर सुप्रीम कोर्ट के उड़ीसा राज्य सलाहकार) कहते हैं कि “ठेकेदारों, क्रियान्वयन अधिकारियों और उनके किराये के गुण्डों द्वारा लोगों और कार्यकर्ताओं पर जानलेवा हमले किये जाते हैं और सामाजिक अंकेक्षण के तथ्यों पर प्रशासन द्वारा कोई कार्यवाही नहीं की जाती।” अंकेक्षण कार्यकर्ताओं पर झूठे मुकदमे दायर करना भी कोई नई बात नहीं रही। फरवरी 2009 में झारखण्ड के लातेहार में आयोजित सामाजिक अंकेक्षण के दो सक्रिय कार्यकर्ताओं नियामत अंसारी और भूखन पर एक फॉरेस्ट गार्ड की हत्या का झूठा आरोप लगाकर 6 दिन तक जेल में रखना ऐसी ही घटनाओं में से एक है। ललित मेहता की हत्या पर प्रशासन द्वारा बरती जा रही लापरवाही किसी से छुपी नहीं है। सारे देश के सामाजिक कार्यकर्ताओं के दबाव के चलते ललित मेहता की हत्या की जाँच सीबीआई को सौंप दी गई पर दो साल बीत जाने पर भी कोई नतीजा सामने नहीं आया है।

सामाजिक अंकेक्षण की प्रभावी प्रक्रिया को शिथिल करने में जवाबदेह अधिकारियों/प्रशासन की भी बड़ी भूमिका है। सामाजिक अंकेक्षण की उपयोगिता कमजोर दण्डात्मक प्रावधानों और जवाबदेह अधिकारियों की लापरवाही के चलते बस बतकही ही रह गई है। नरेगा में जुमाने के रूप में निर्धारित की गई राशि इतनी कम है कि उसका भुगतान करने में दोषियों को कोई परेशानी नहीं है। दूसरी ओर दोषियों की जाँच की जो व्यवस्था है वह ऐसी है कि एक चोर दूसरे चोर की जाँच करे। नागर समाज संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होने के बावजूद उनकी रिपोर्ट की सत्यता को स्वायत्तता प्राप्त नहीं है।



नरेगा की उपलब्धियाँ

उनकी रिपोर्ट की भी सरकारी ढर्रे से पुष्टि की जाती है जिसका परिणाम किस रूप में सामने आता है कहने की आवश्यकता नहीं है। जवाबदेह अधिकारियों की लापरवाही सरकारी अमले की प्रतिबद्धता दर्शाती है। यह लापरवाही किस हद तक है इसका अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि नवंबर 2007 में प्रो. ज्यां ट्रेज और ऐनी राजा (केन्द्रीय रोज़गार गारंटी परिषद के सदस्य) द्वारा उड़ीसा के पंचायती राज विभाग के कमिश्नर सह सचिव (जो कि नरेगा के राज्य कार्यक्रम समन्वयक भी हैं) को लोगों की ओर से 20 शिकायतें दर्ज की गई थी जिस पर एक माह के भीतर कार्यवाही करने का आश्वासन दिया गया था। डेढ़ साल बाद मार्च 2009 में जब कार्यकर्ताओं ने यह जानना चाहा कि शिकायतों पर क्या कार्यवाही की गई तो राज्य कार्यक्रम समन्वयक ने शिकायतों की प्रति पुनः उपलब्ध कराने की मांग की क्योंकि पहले दर्ज किये गए शिकायत-पत्र खो गए हैं। सरकारी अमले की यह लापरवाही सिर्फ उड़ीसा ही नहीं बल्कि पूरे देश में व्याप्त है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक तरफ जहाँ सरकार ज्यादा से ज्यादा लोगों को काम मुहैया कराने के लिए प्रतिबद्धता दिखाती है वहीं सरकारी अमला नरेगा के क्रियान्वयन को मजबूत करने के सबसे महत्वपूर्ण अंग 'सामाजिक अंकेक्षण' को कितनी लापरवाही से लेता है कि न तो अंकेक्षण के तथ्यों पर उचित कार्यवाही की जाती है और न ही अंकेक्षण कार्यकर्ताओं के खिलाफ़ की गई हिंसात्मक गतिविधियों पर कोई ठोस कदम उठाया जाता है।

अभी तक पूरे देश में कई सामाजिक अंकेक्षण किये जा चुके हैं परंतु उनकी रिपोर्टों के आधार पर उचित व सार्थक कार्यवाही होने में मात्र कुछेक अंकेक्षणों को ही सफलता मिली है। ऐसी स्थिति में सरकार को चाहिए कि सामाजिक अंकेक्षण संबंधी व्यवस्था पर पुनर्विचार कर उसे पुनर्गठित किया जाए और इतना सुदृढ़ किया जाए कि यह सिर्फ खानापूर्ति न रहे। अंकेक्षण के ढाँचे में समुचित दण्डात्मक प्रावधान होना और उनका क्रियान्वित होना लोगों में सामाजिक अंकेक्षण के प्रति विश्वास को कायम रखने के साथ-साथ नरेगा के सफल क्रियान्वयन के लिए अत्यंत आवश्यक कदम है। इसके साथ ही ज़रूरी है कि अंकेक्षण दलों के विरुद्ध होने वाली हिंसात्मक गतिविधियों को सरकार गंभीरता से ले और उन पर कार्यवाही के लिए प्रशासन को बाध्य करे। सरकार को इस संदर्भ में कोई ठोस रणनीति बनानी होगी ताकि नरेगा के सफल क्रियान्वयन हेतु अपनी जान दाँव पर लगाने वाले कार्यकर्ताओं का बलिदान व्यर्थ न जाए और नरेगा अपने उद्देश्यों को सफल रूप से प्राप्त कर सके।



कुछ कमियों और अनियमितताओं के बावजूद नरेगा, सरकार द्वारा चलाए गए अन्य विकास कार्यों और जनहितकारी योजनाओं से महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही यह अन्य योजनाओं के लिए आदर्श भी है। समस्याओं के बावजूद नरेगा ने कई जगह अच्छा काम किया है। इसके लागू होने के बाद पलायन, बालश्रम जैसी घटनाओं में कमी आई है। ग्रामीण संपर्क बढ़ाने के साथ ही सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता और जलसंरक्षण जैसे कार्य में नरेगा ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। नरेगा में काम करने के बाद ग्रामीण मजदूरों की क्रयक्षमता भी बढ़ी है। इसके अलावा नरेगा ने महिला सशक्तिकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ग्रामीण महिलाएँ जो गाँव से बाहर जाकर मजदूरी करने में असमर्थ थीं, उन्हें नरेगा ने उनके घर के आस-पास ही काम दिया जिससे अब वे भी अपने परिवार के लिए अतिरिक्त राशि जुटा पा रही हैं। नरेगा से पहले इन महिलाओं के लिए काम की उपलब्धता सुलभ नहीं थी।

राजस्थान के भीलवाड़ा जिले के ग्रामीण इलाकों में सूखा और अकाल के समय रोज़गार मुहैया कराकर नरेगा ने न सिर्फ ग्रामीण परिवारों के लिए पूरक आय सुनिश्चित की बल्कि काम की तलाश में ग्रामीणों का शहरों की ओर पलायन भी रोका है। नरेगा ने ग्रामीणों की आर्थिक रूप से ही मदद नहीं की बल्कि गाँवों में टिकाऊ परिसंपत्तियों के निर्माण में भी सहायता की है।

राजस्थान के दंता गाँव में मजदूर किसान शक्ति संगठन से जुड़े सामाजिक कार्यकर्ता राम देव का कहना है कि लोग नरेगा में एक वित्तीय वर्ष में 100 दिन का रोजगार प्राप्त कर सकते हैं और प्रतिदिन 95 से 100 रुपये मजदूरी प्राप्त कर वे लगभग 10,000 रुपये सालाना कमा सकते हैं। उनके अनुसार नरेगा के अंतर्गत 80 प्रतिशत महिलाओं ने काम किया है। अतः योजना ने महिलाओं को काम देकर परिवार की आय में अतिरिक्त वृद्धि की है जिससे ग्रामीण परिवारों की क्रय क्षमता भी बढ़ी है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम के लागू होने के बाद गाँवों से शहरों की ओर होने वाले पलायन में भी कमी आई है। दंता गाँव में नरेगा के अंतर्गत काम करने वाली एक महिला कमला के अनुसार पहले जब उन्हें गाँव में काम नहीं मिलता था तो सभी को काम की तलाश में शहरों की ओर जाना पड़ता था, लेकिन अब पुरुषों को भी शहरों की ओर नहीं जाना पड़ता। साथ ही उन्होंने समय पर मजदूरी न मिलने और मजदूरी बढ़ाने की बात भी कही।

गोविन्दपुरा गाँव की लीला रामपाल कहती हैं कि वे नरेगा के तहत इस वर्ष में 65 दिन काम कर चुकी हैं और प्रतिदिन 95 से 100 रुपये प्राप्त कर रही हैं। इसलिए अब शहर में जाकर काम ढूँढ़ने की कोई ज़रूरत नहीं है। रामलाल का कहना है कि जब से हमने नरेगा में काम करना शुरू किया है तब से हमारी आर्थिक स्थिति में बहुत अधिक सुधार हुआ है।

मनोहर पुरा गाँव के गरीब परिवारों के जीवन और गाँव से पलायन पर भी नरेगा ने सकारात्मक प्रभाव डाला है। नरेगा के लागू होने से बड़े पैमाने पर गाँव से शहरों की ओर होने वाले पलायन में कमी आई है। गैर-सरकारी संगठन फाउण्डेशन फॉर ईकोलोजिकल सिव्युरिटी के हरनाथ सिंह के मुताबिक नरेगा से पहले गाँव के



सभी 10 कालबेलिया जनजाति के परिवार काम की तलाश में शहरों में जाते थे लेकिन अब इनमें से सिर्फ 6 परिवार ही शहर गए, वह भी कुछ महीनों के लिए। शेष 4 परिवार गाँव में ही रहे। साथ ही उन्होंने बताया कि गाँव के कालबेलिया परिवार अक्सर खाना मांगने एक घर से दूसरे घर जाया करते थे। नरेगा में काम मिलने के बाद अब उन्हें खाने के लिए भीख नहीं माँगनी पड़ती।

नरेगा ने कुछ हद तक बालश्रम रोकने में भी मदद की है। एक गैर-सरकारी संगठन द्वारा डूंगरपुर जिले में किए क्षेत्र-भ्रमण की रिपोर्ट के अनुसार (पलायित) बाल मजदूरी की घटनाओं में कमी आई है। जिले से 10 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों का पलायन बड़े पैमाने पर हो रहा था। ये बच्चे गुजरात के बीटी कॉटन के खेतों, कपड़ा बाजारों, ईट भट्टों, ढाबों और निर्माण कार्यों में मजदूरी करने जाते थे। ग्रामीणों के अनुसार बच्चों के पलायन में लगभग 20 प्रतिशत की कमी आई है और वे इसे नरेगा का परिणाम मानते हैं। यदि वहाँ 10 से 14 वर्ष के आयु समूह के बच्चों के लिए कोई आवासीय विद्यालय हो तो अधिकांश ग्रामीण अपने बच्चों को आवासीय विद्यालय में भर्ती कराने को भी तैयार है।

उत्तराखंड में भी नरेगा के अंतर्गत बनाए जाने वाले मत्स्य तालाबों ने वहाँ के जनजातीय परिवारों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

जिस प्रकार नरेगा में अनियमितताएँ और भ्रष्टाचार की घटनाएँ सभी राज्यों में हुई हैं। उसी प्रकार नरेगा ने सभी राज्यों में कुछ न कुछ सकारात्मक प्रभाव अवश्य डाला है। गाँवों में संपत्तियों का निर्माण, ग्रामीण संपर्क में वृद्धि, ग्रामीणों के जीवन स्तर और आर्थिक स्थिति में सुधार, सिंचाई और पीने के पानी की उपलब्धता में वृद्धि, जलसंरक्षण, मिट्टी संरक्षण आदि नरेगा की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। इसके अलावा जो सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव नरेगा ने ग्राम्य जीवन पर डाला है वह यह है कि अब ग्रामीण अपने गाँव में ही रोजगार के अवसरों की उपलब्धता के विषय में सोचने लगे हैं और गाँव के विकास की अवधारणा अब पहले से कहीं अधिक व्यापक हुई है। इसके अलावा गाँवों में सामुहिक सहभागिता, सामुहिक निर्णय और निजत्व से ऊपर उठकर सामुहिक विकास की अवधारणा को जन्म देने और क्रियान्वित करने के साथ ही सामुहिक नेतृत्व को भी नरेगा ने बढ़ावा दिया है। □

(सामग्री स्रोत :

1. Review of implementation of flagship programmes, Planning Commission, <http://www.planningcommission.gov.in/plans/advstat.html>
2. Implementation of NREGA and social inclusion, Jitendra Rath, <http://www.merineews.com/share article.do?detail=print&articleID=15786369>
3. A sieve of a scheme, Chandrani Banerjee, <http://www.outlookindia.com/print article.aspx?264994>
4. Irregularities alleged in NREGA implementation, Mahim Pratap Singh, <http://www.hinduonnet.com/the hindu/thscript/print.pl?file=2009081958470300.htm&date=2009/08/19&pr=ths>
5. Most complaints on NREGA come from Uttar Pradesh, Ruhi Tiwari, <http://www.livemint.com/articles/printarticle.aspx?artid=44500FAE-E416-11DE-B2F4-000B5DABF613>

नरेगा के बेहतर क्रियान्वयन के लिए कुछ सुझाव

नरेगा के सफल क्रियान्वयन की जिम्मेदारी मुख्यतः राज्य सरकारों की है। प्रत्येक राज्य की अपनी-अपनी भौगोलिक व संरचनात्मक स्थितियाँ हैं, साथ ही कार्य के प्रकार की आवश्यकताएँ भी। ऐसी स्थितियों में विभिन्न राज्यों द्वारा नरेगा के क्रियान्वयन को बेहतर और व्यापक करने के कुछ सुझाव प्रस्तावित किये गए हैं, जिन पर गौर करना निश्चित ही नरेगा के सफल क्रियान्वयन में सहायक होगा।

- ◆ नरेगा में महिलाओं के लिए अलग कार्य स्थल होना चाहिए, ताकि महिलाओं की भागीदारी बढ़ाई जा सके।
- ◆ ग्राम पंचायत और विकासखंड स्तर पर तकनीकी व अन्य कर्मचारियों की आवश्यकता को शीघ्र ही पूर्ण किया जाना चाहिए ताकि नरेगा का कार्य बाधित न हो।
- ◆ गैर-सरकारी संगठनों द्वारा मजदूरों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करने के लिए जागरूकता कार्यक्रम आयोजित कराए जाएं ताकि नरेगा के सही अमल में उनकी सहभागिता बढ़ सके।
- ◆ नरेगा के साथ अन्य योजनाओं जैसे महिला एवं बाल विकास विभाग, अनुसूजित जाति-जनजाति विभाग को जोड़ा जाना चाहिए।
- ◆ पंचायती राज संस्थाओं का सशक्तिकरण करना नरेगा के सफल क्रियान्वयन में अत्यंत आवश्यक है।
- ◆ अन्य संबंधित संस्थाओं व कार्यक्रमों जैसे मिट्टी संरक्षण, उद्यानिकी विकास, हॉर्टिकल्चर एवं प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, भूमि विकास, सिंचाई और जल संग्रहण कार्यक्रमों को नरेगा में शामिल करना चाहिए।
- ◆ सामग्री पर खर्च के लिए कुल आबंटित राशि के 40 प्रतिशत निर्धारण को पहाड़ी क्षेत्रों में बढ़ाया जाना चाहिए।
- ◆ राज्य को 100 दिन से ज्यादा का रोजगार देने की छूट देनी चाहिए
- ◆ उत्तरपूर्व में बैंक सुविधाओं की कमी के कारण बैंक प्रतिनिधियों द्वारा 2 प्रतिशत प्रभार की मांग की जा रही है, केन्द्र सरकार को इसका भुगतान करना चाहिए।

बोलिविया जलवायु परिवर्तन सम्मेलन

नष्ट होते ग्लेशियर की धरती का संदेश

- अजय के झा

चकाल्टाया ग्लेशियर - ला पाज़ से 30 कि.मी. दूर एक पर्वत जिसकी चोटी समुद्र तल से 5,530 मीटर ऊपर तक पहुँचती है, जलवायु परिवर्तन के वैश्विक प्रतीकों में से एक है। एक दशक पहले तक इसका उपयोग सबसे ऊँची स्की चलाने के लिए किया जाता था जो कि अब सिर्फ पत्थरों का ढेर बन चुका है। बोलिविया में 20 प्रतिशत एण्डीज़ ग्लेशियर हैं जिनमें से अधिकांश चकाल्टाया की स्थिति को दोहरा रहे हैं। ला पाज़ शहर की 80 प्रतिशत से अधिक जलापूर्ति ग्लेशियर से होती है और ग्लेशियरों का पिघलना शहर व लोगों के जीवन के लिए गंभीर प्रश्न खड़ा कर रहा है। तेजी से पिघलते ग्लेशियरों और पानी के अभाव ने बोलिविया की कुल जनसंख्या की 90 प्रतिशत, देशज जनता को गरीबी की ओर धकेल दिया है। यह दृश्य जलवायु परिवर्तन और मातृस्वरूपा पृथ्वी के अधिकारों पर वर्ल्ड पीपुल्स कांफ्रेंस के लिए बहुत ही प्रासंगिक था।

यह अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन 19 से 22 अप्रैल 2010 तक बोलिविया के दूसरे बड़े शहर कोचाबाम्बा में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन ने जलवायु परिवर्तन पर रुकी हुई बहस को एक ताज़ी साँस प्रदान की है। सम्मेलन में दुनियाभर से 35,000 से अधिक लोगों व 70 देशों की सरकारों ने सहभागिता की। इस सम्मेलन ने जलवायु परिवर्तन को एक नया व ऐसा परिप्रेक्ष्य प्रदान किया है जो बाज़ार आधारित झूठे समाधानों को नकारते हुए जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में देशज लोगों के सहयोग और भूमिका वाले नेतृत्व पर बल देता है और साथ ही जो यह स्पष्ट करता है कि हम पृथ्वी पर आश्रित हैं न कि पृथ्वी हम पर। यह जनवार्ता असफल

घोषणा-पत्र में जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए कृषि को एक प्रमुख रणनीति के रूप में मान्यता दी गई है। देशज और ग्रामीण खेती की व्यवस्था पर आधारित स्थाई कृषि प्रणालियों को अपनाने से जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा दोनों ही समस्याओं को संबोधित किया जा सकता है। घोषणा-पत्र के अनुसार कृषि व्यवसाय के तकनीकी, व्यावसायिक और राजनैतिक दृष्टिकोण ने जलवायु परिवर्तन के संकट को और गहरा किया है व दुनिया में भूख के संकट को बढ़ाया है।

रही कोपेनहेगन वार्ता के प्रत्युत्तर के रूप में बुलाई गई थी, जहाँ कि चंद देशों ने चर्चा को अपने अधिकार में लेने व एक ऐसा दस्तावेज तैयार करने का प्रयास किया था जो कि बहस के मूल आधार, विकसित देशों की ऐतिहासिक ज़िम्मेदारी से परे है और जो दुनिया के लोगों के प्रति किसी जवाबदेही के बिना उन्हें प्रदूषण फैलाने की अनुमति देने के साथ ही विकासशील, अल्पविकसित व कई छोटे द्वीपीय देशों को बिना किसी गलती के मौत के हवाले करता है।

इवो मोरालेस आयमा, बोलिविया के वामपंथी राष्ट्रपति किसानों, फ़ैक्ट्री मज़दूरों और कोका उत्पादकों के एक समूह कोकालेरोस (जो कि बोलिविया से बैकटेल की वापसी के लिए प्रमुखता से ज़िम्मेदार था) के नेतृत्वकर्ता के रूप में उभरे हैं। भूतपूर्व तानाशाह राष्ट्रपति ह्यूगो बेंज़र, विश्व बैंक व बैकटेल कंपनी के गठजोड़ द्वारा बोलिविया में किये गए जल व्यवस्था के निजीकरण के खिलाफ़ और 21वीं सदी के पहले विद्रोह के रूप में देखे जाने वाले इस जल-युद्ध ने इवो मोरालेस को राष्ट्रपति के रूप में शीर्ष नेतृत्व तक पहुँचाया है। इवो मोरालेस उन राष्ट्रप्रमुखों में से एक हैं जिन्होंने कॉपेनहेगन एकोर्ड का खुलकर विरोध किया। उन्होंने कॉपेनहेगन एकोर्ड पर हस्ताक्षर करने से इन्कार किया और जलवायु परिवर्तन पर एक वैकल्पिक जन-सम्मेलन की घोषणा की।

इस सम्मेलन के प्रति, जिसे कि संयुक्त राष्ट्र से कोई मदद नहीं थी, दुनिया का उत्साह इस बात से स्पष्ट होता है कि बोलिविया जैसे छोटे देश के लिए 140 देशों से 35,000 से अधिक लोगों ने यात्रा की। हजारों लोगों सहित 17 कार्यकारी समूहों ने कई विषयों पर चर्चा के दौरान (जैसे कि जलवायु परिवर्तन के संरचनात्मक कारण, जो कि संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित बहसों में सिर से नदारद थे) दस्तावेज़ीकरण का कार्य किया। उत्सव और पारंपरिक मंत्रोच्चार के बीच सम्मेलन की शुरुआत हुई जहाँ राष्ट्रपति इवो मोरालेस के साथ भारत समेत कई अन्य राष्ट्रों ने पूँजीवाद को शोषण का साधन मानते हुए नकारा और मातृस्वरूपा पृथ्वी के अधिकारों के संरक्षण की प्रतिबद्धता व्यक्त की। राष्ट्रपति ने पूँजीवाद को पृथ्वी के विनाश के लिए दोषी ठहराते हुए “मृत्यु या ग्रह” का नारा दिया। उन्होंने सभी विकासशील देशों को अपनी क्षमतानुसार उत्सर्जन कम करने के लिए भी प्रोत्साहित किया। जब संयुक्त राष्ट्र की प्रतिनिधि अपनी बात रखने के लिए आई तो स्टेडियम में मौजूद भीड़ के घोष ने उनकी



बात को बीच में ही रोक दिया, जो कि संयुक्त राष्ट्र की निष्क्रियता और कॉपेनहेगन एकाईड को लाने में उसके सहअपराध पर स्थानीय लोगों की भावनाओं का संकेत था।

कोचाबाम्बा जलवायु सम्मेलन द्वारा प्रतिपादित “एकाईड ऑफ द पीपुल्स” ने कई मुद्दों को उठाया है, जिन्हें कि पूर्व में आयोजित जलवायु परिवर्तन सम्मेलनों में विकासशील देशों के प्रतिनिधि सामने लाने में असफल रहे हैं। एक ओर जहाँ सम्मेलन ने पूँजीवाद, बाज़ार आधारित व्यवस्थाओं, विकसित देशों द्वारा अपनी अत्यधिक सुविधाभोगी और विनाशकारी जीवनशैली को बरकरार रखने की ज़िद और जलवायु परिवर्तन के बोझ को गरीब देशों पर थोपने के प्रयासों को पूर्णतः नकारा है वहीं ऐतिहासिक भूमिका पर आधारित साझी किन्तु विभेदीकृत ज़िम्मेदारी पर अपने सहयोग को स्पष्ट रूप से दोहराया है। साथ ही यूएनएफसीसीसी व क्योटो प्रोटोकॉल के तहत द्विपक्षीय बातचीत और प्रौद्योगिकी व जलवायु सहायता के लिए विकासशील देशों के अधिकार की दृढ़ता को भी दोहराया है।

सम्मेलन के घोषणा-पत्र में तापमान में वृद्धि को 1 डिग्री सेल्सियस से नीचे रखा जाना महत्वपूर्ण माना गया है। यह लक्ष्य कॉपेनहेगन एकाईड में तय किये गए लक्ष्य 2 डिग्री सेल्सियस से अग्रिम है। पीपुल्स एकाईड के अनुसार 2 डिग्री सेल्सियस तापमान वृद्धि से 20 से 30 प्रतिशत प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा है। यह घोषणा-पत्र ऊर्जा और संसाधनों में असंतुलन के लिए पूँजीवाद को प्रमुख संरचनात्मक कारण के रूप में दोषी करार देता है और दृढ़तापूर्वक कहता है कि अमीर देशों का कार्बन फुटप्रिंट ग्रह की क्षमता से पाँच गुना ज़्यादा है। इसके द्वारा विकसित देशों से आह्वान किया गया है कि वे दिसम्बर 2010 में मैक्सिको में उत्सर्जन में कमी के महत्वाकांक्षी लक्ष्यों को अपनाएँ तथा 2020 तक उत्सर्जन को 50 प्रतिशत कम करने और उत्सर्जन स्तर को 300 पीपीएम तक लाने पर सहमत हों।

यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि विकासशील देशों पर जलवायु परिवर्तन के भार को धकेलने के सभी प्रयासों की निंदा की जानी चाहिए। विकासशील देशों को जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से उबरने और अनुकूलन अपनाने के लिए प्रौद्योगिकी और अनुकूलन कोष मिलना चाहिए। कोष ऋण और अन्य वित्तीय व्यवस्थाओं द्वारा अनुदान के रूप में होना चाहिए और इसे कार्बन ऑफसेट व अन्य बाज़ार आधारित व्यवस्थाओं से जुटाए गए संसाधनों के अतिरिक्त होना चाहिए। विकासशील देशों में जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए सभी विकसित देशों में अपने सकल घरेलू उत्पाद के 6 प्रतिशत से नवीन वार्षिक सहायता कोष के लिए प्रतिबद्धता ज़रूरी है। यह सहायता कोष सीधा व बिना किसी शर्त के और ऐसा होना चाहिए जो राष्ट्रीय प्रभुत्व और सर्वाधिक प्रभावित समुदायों व समूहों के आत्मसंकल्प में हस्तक्षेप न करे। यह भी प्रस्ताव रखा गया है कि नई वित्तीय सहायता व्यवस्था मैक्सिको में तैयार होनी चाहिए जो कि कॉप के प्राधिकार के अधीन कार्यरत होगी जिसमें विकासशील देशों से पर्याप्त प्रतिनिधित्व होना चाहिए।

घोषणा-पत्र में जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए कृषि को एक प्रमुख रणनीति के रूप में मान्यता दी गई है। देशज और ग्रामीण खेती की व्यवस्था पर आधारित स्थाई कृषि प्रणालियों को अपनाने से जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा दोनों ही समस्याओं को संबोधित किया जा सकता है। इस घोषणा-पत्र में यह भी माना गया है कि जलवायु परिवर्तन कृषि और सारी दुनिया के किसानों व देशज लोगों की जीवन पद्धति पर गंभीर प्रभाव डाल रहा है और यह प्रभाव भविष्य में और अधिक गंभीर होंगे। यह लाभ के उद्यमी उद्देश्यों द्वारा संचालित और

जलवायु परिवर्तन के बड़े कारण के रूप में कृषि व्यवसाय को दोषी ठहराता है। घोषणा-पत्र के अनुसार कृषि व्यवसाय के तकनीकी, व्यावसायिक और राजनैतिक दृष्टिकोण ने जलवायु परिवर्तन के संकट को और गहरा किया है व दुनिया में भूख के संकट को बढ़ाया है। सभी मुक्त व्यापार अनुबंध, बौद्धिक संपदा अधिकारों के आवेदन के सभी रूप और झूठे समाधान जिनमें जीएमओ भी शामिल हैं, मौजूदा संकट को और भी गहरा कर रहे हैं। घोषणा-पत्र के अनुसार देशज लोगों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र के घोषणा-पत्र को जलवायु परिवर्तन वार्ताओं में पूर्णतः मान्य और क्रियान्वित किया जाना चाहिए साथ ही उनके भूमि व क्षेत्र के सम्मिलित अधिकारों को वनों के संरक्षण व संवर्द्धन के लिए रणनीति के रूप में सुनिश्चित किया जाना चाहिए क्योंकि अधिकांश वन देशज लोगों, जातियों और परंपरागत समुदायों के प्रदेशों में अवस्थित है। घोषणा-पत्र में आरईडीडी और इसके विभिन्न रूपों की आलोचना की गई है। उल्लेख किया गया है कि विकसित देशों का उत्सर्जन 1990-2007 के दौरान 11.2 प्रतिशत बढ़ा है, इससे स्पष्ट होता है कि बाज़ार व्यवस्था संकट की जड़ तक पहुँचने में असफल रही है। इसलिए इसे पूर्णतः नकार देना चाहिए।

घोषणा-पत्र में जलवायु परिवर्तन के विस्थापितों की भी बात की गई है। यह पहली बार है कि जलवायु परिवर्तन विमर्श में इस विषय पर विचार-विमर्श किया गया है। अनुमान है कि वर्तमान में जलवायु परिवर्तन के कारण विस्थापितों की संख्या 5 करोड़ है और ऐसा





अनुमान है कि वर्ष 2050 तक जलवायु परिवर्तन के कारण 20 करोड़ से 1 अरब लोग विस्थापित हो जाएंगे। विकसित देशों को जलवायु विस्थापितों के प्रति जिम्मेदारी को अंगीकार करना चाहिए, उनका अपने क्षेत्र में स्वागत करना चाहिए और अंतर्राष्ट्रीय संधि, जो कि जलवायु विस्थापितों की परिभाषा प्रदान करती है, पर हस्ताक्षर करके उनके मलभूत अधिकारों को मान्यता देनी चाहिए। साथ ही सभी राष्ट्रों द्वारा दृढ़ता से इसका पालन किया जाना चाहिए। मूल, पारगम्य और गंतव्य देशों में प्रवासियों, शरणार्थियों और विस्थापितों के अधिकारों को सुनिश्चित करने, पारदर्शी बनाने, दस्तावेजीकरण करने और अधिकारों के उल्लंघन पर न्याय व दण्ड के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय विवेकशील न्यायाधिकरण (International Tribunal of Conscience) की स्थापना के साथ राज्यों, कंपनियों और अन्य अभिकर्ताओं की जिम्मेदारी को सुनिश्चित करने की भी यह घोषणा-पत्र पैरवी करता है।

इस घोषणा-पत्र से जो सबसे प्रभावी प्रस्ताव निकलकर आया है वह है - अंतर्राष्ट्रीय जलवायु न्यायाधिकरण (International Climate Tribunal)। यह एक अंतर्राष्ट्रीय जलवायु एवं पर्यावरण न्याय प्राधिकरण बनाने की मांग करता है जिसके पास पर्यावरण को दूषित करने वाले देशों, उद्यमों और लोगों को रोकने, न्याय करने और दण्डित करने की क्षमता हो।

यह घोषणा-पत्र हमें मातृस्वरूपा पृथ्वी के साथ अपने संबंध पर पुनर्विचार करने के लिए विवश करता है। सम्पूर्ण मानवजाति ने सदैव यही माना है कि पृथ्वी हमसे है। हमने बिना यह सोचे कि हम पृथ्वी पर निर्भर हैं, जब जैसी आवश्यकता पड़ी इसका दोहन और प्रयोग किया है और कई बार तब भी जबकि ऐसा करने की आवश्यकता नहीं थी। इस सम्मेलन से जो प्रस्ताव सामने आए हैं वह मुख्य रूप से बाज़ार आधारित व्यवस्थाओं को नकारते हैं और एक अंतर्राष्ट्रीय जलवायु एवं पर्यावरण न्याय प्राधिकरण की स्थापना की मांग के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय वार्ताओं की जटिलताओं के लिए अपरिहार्य विचारों व लापरवाही को स्पष्ट करते हैं। हालांकि अभी यह देखना बाकी है कि अन्य छोटे और बड़े देशों की इन प्रस्तावों पर क्या प्रतिक्रिया होगी। पर इस सम्मेलन की बड़ी सफलता यह है कि इसने अंतर्राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन वार्ताओं में नागर समाज संस्थाओं की वृहद भूमिका की मांग की है जिसका कि सभी देशों में नागर समाज संस्थाओं को पुनः उत्साहित और क्रियाशील करने के रूप में प्रभाव होना अवश्यंभावी है। कोपेनहेगन की जमा देने वाली सदी और बंद घेरे से बाहर निकलकर सारी दुनिया की नागर समाज संस्थाएँ निश्चित रूप से शाश्वत वसंत के शहर में तैयार पीपुल्स एकाईड की गर्मी को महसूस करेंगी।

प्राचीन समय में भी था तरेगा

बुंदेलखण्ड का इतिहास

अधिकांश लोगों और योजनाकारों को शायद इस बात की जानकारी नहीं होगी कि बुंदेलखण्ड में प्राचीन समय में भी ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना थी जिसे कि शासक सूखे के समय में द्वि-आयामी कल्याणकारी रोज़गार योजना के रूप में चलाते थे। यह योजना न सिर्फ़ रोज़गार उपलब्ध कराती थी बल्कि सूखे से निपट सकने वाली संरचनाओं जैसे कि तालाब, बांध और कुँए के निर्माण में लोगों को संलग्न रखती थी।

बुंदेलखण्ड इतिहासकार और इतिहास विभाग, झांसी महाविद्यालय के प्रमुख के पद से सेवानिवृत्त प्रो. शिवपूजन पाठक का कहना है कि 'बुंदेलखण्ड में प्राचीनकाल में भी नरेगा था, इतिहास में इसके साक्ष्य मिलते हैं।' चन्देल और बुंदेला शासक सूखे और अकाल के समय में लोगों को रोज़गार और भोजन प्रदान करने के लिए जन कल्याणकारी योजनाएँ चलाने के साथ ही क्षेत्र को आगे भी सूखे से निपटने में सक्षम बनाने के लिए वर्षा जल संचयन की संरचनाओं का निर्माण करते थे। ब्रिटिश शासकों ने भी इस योजना को चलाया पर उन्होंने इसे 'अकाल राहत' का नाम दिया और 'अकाल मज़दूरों' को रोज़गार प्रदान किया। ब्रिटिश काल के दस्तावेज़ों में इसके कुछ अभिलेख भी हैं।

शाही बुंदेला वंश के वंशज दीवान केसरी सिंह का कहना है कि "1905 के अकाल में शासक मलखान सिंह ने अकाल राहत रोज़गार के रूप में चरखरी में एक विशाल तालाब बनाया था।" मलखान सागर उस समय बनाई गई संरचनाओं में से एक है जो अब तक काम कर रही है।

एक झांसी भूगोल-कोश के अनुसार 'ब्रिटिश सरकार ने अकाल प्रभावित लोगों को राहत पहुँचाने के लिए कुछ मापदण्ड अपनाए थे। सितम्बर 1868 में नागरिक और सैन्य अधिकारियों की एक स्थानीय समिति स्थितियों के अवलोकन के लिए बुलाई गई थी। अक्टूबर 1868 में अकाल प्रभावित लोगों की राहत के लिए ग्वालियर सरकार 400 रुपये और उसके बाद 150 रुपये प्रति समूह देने के लिए राजी हुई। ब्रिटिशों ने ग़रीबों के लिए झांसी, मऊ रानीपुर, बरवा, सागर और बबीना में कई घरों का भी निर्माण कराया। शारीरिक रूप से सक्षम मज़दूरों के रोज़गार के लिए 13 कार्य प्रारंभ किये गए, जैसे कि सागर मार्ग पर पुलों का निर्माण, मऊ के पचवाड़ा और मरगढ़वाड़ा में सिंचाई तटबंध का निर्माण आदि। 71,881 रुपये खर्च करके 9,42,465 लोगों को रोज़गार प्रदान किया गया। भूमि राजस्व से प्राप्त 90,000 रुपयों को भी निर्गमित किया गया था। इसके अतिरिक्त 1,11,536 रुपये कुँओं के निर्माण व बीज, हल और मवेशी खरीदने के लिए भी आबंटित किये गए। अभिलेख इस बात का भी उल्लेख करते हैं कि तालबेहट, बांसी, बानपुर, महरौनी और जाखलौन में ग़रीबगृह भी खोले गए थे। बानपुर में एक धोती फैक्ट्री प्रारंभ की गई थी ताकि निम्नस्तरीय घरों में रहने वालों के लिए कपड़ा उपलब्ध कराया जा सके।

चन्देल, बुंदेला और ब्रिटिश शासक कामगारों को अकाल मज़दूरी के साथ-साथ खाद्यान्न भी प्रदान करते थे। (साभार : हिन्दुस्तान टाइम्स, इन्दौर, 4 मई 2010)





अखबारों की सुर्खियाँ

ईमानदारी से नहीं हो रहा मनरेगा का क्रियान्वयन

केन्द्रीय ग्रामीण विकास राज्य मंत्री प्रदीप जैन ने कहा कि इलाके में मनरेगा का क्रियान्वयन ईमानदारी के साथ नहीं किया जा रहा है। और अभावग्रस्त बुंदेलखण्ड में अगर मनरेगा का यही हाल रहा तो इसके जरिये लोगों का पलायन रोकने के प्रयास अप्रभावी हो जाएंगे। जैन ने केन्द्र संचालित विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं की समीक्षा करते हुए कहा कि न तो किसी को 100 दिन का काम मिल रहा है और न ही समय से भुगतान मिलना संभव हो पा रहा है। उन्होंने चेतावनी भरे अंदाज़ में कहा कि यह स्थिति बर्दाश्त नहीं की जाएगी और अधिकारियों ने अपना रवैया न सुधारा तो उन्हें दण्डित किया जाएगा। निरीक्षण भवन में हुई बैठक में जिलाधिकारी के न आ पाने के कारण मुख्य विकास अधिकारी एस.पी. अंजोर ने उन्हें केन्द्र सरकार की संचालित योजनाओं की प्रगति के बारे में बताया। अंजोर ने बताया कि जिले में मनरेगा के तहत 157 करोड़ रुपये की धनराशि अवमुक्त हुई थी जिसमें से 135 करोड़ रुपये खर्च हुए।

जैन ने कम्प्यूटर फीडिंग की भी जानकारी ली और उन्होंने कहा कि अभी तक फीडिंग पूरी न हो पाने से जाहिर होता है कि इसमें शिथिलता बरती जा रही है। उपस्थित सीडीओ ने कहा कि 15 दिन के अंदर फीडिंग का सारा काम पूरा करा लिया जाएगा।

(साभार : जनसत्ता, 12 अप्रैल 2010)

उद्देश्यों से भटक गई मनरेगा

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना अपने मूल उद्देश्यों से भटक रहा है। दलितों के 50 गाँवों में किए गए सर्वे के बाद सेंटर फार इन्वायरनमेंट एंड फूड सिक्यूरिटी ने नई दिल्ली में जारी रपट में ये बात कही। रपट में कहा गया कि मनरेगा में कागज़ी खानापूर्ति कर अफसर अपने हित साध रहे हैं। कागज़ों में जिनको नौकरी-रोज़गार मिले हैं उनमें से अधिकांश को मेहनताना तक नहीं मिला है। इतना ही नहीं

दलित गाँवों का आलम तो यह है कि अधिकांश लोग मनरेगा के बारे में जानते तक नहीं हैं। कुछ लोग चार साल से मज़दूरी की बाट जोह रहे हैं, अधिकारी मज़दूरी का भुगतान मानकर चल रहे हैं।

बुंदेलखण्ड, चित्रकूट, बांदा, महोबा, झांसी, ललितपुर के गाँवों में बीते साल नवंबर से दिसंबर के बीच 50 दलित गाँवों में किये गए इस सर्वे की रिपोर्ट के अनुसार बुंदेलखण्ड में मनरेगा भ्रष्टाचार, भुखमरी, ग़रीबी और अमानवीयता का पर्याय बन चुका है। रपट बताती है कि यहाँ ऐसे लोगों की भरमार है जिनका कार्ड तो बना दिया गया है लेकिन वर्ष 2009 में नरेगा के तहत एक भी दिन का रोज़गार नहीं मिला। हिम्मत को बीते साल सौ दिन की जगह पाँच दिन का ही रोज़गार मिला। कालू के नाम पर 32 दिन और राजकुमार के नाम पर 234 दिन रोज़गार दिया जाना चढ़ा है जबकि उन्हें तीन दिन का ही काम और भुगतान मिला है। ऐसे सैकड़ों दलित हैं जिनके पैसे अधिकारी गबन कर जाते हैं। रिपोर्ट के अनुसार ग्रामसभा की बैठक और सामाजिक अंकेक्षण का मतलब तक दलितों को नहीं पता है किंतु अफसरों के रिकॉर्ड में यह सब होता है। जो लोग गाँव से रोज़गार के लिए पलायन कर चुके हैं उन्हें भी मनरेगा का लाभार्थी बताया जाना आम बात है। लेकिन शीर्ष प्रशासन का ध्यान इस ओर नहीं है।

(साभार : जनसत्ता, 13 अप्रैल 2010)

उड़ीसा में कुपोषण से मौत : सरकार का टूटता सुरक्षा कवच

पेट दर्द से होने वाली सिलसिलेवार मौतें पश्चिमी उड़ीसा के बोलंगीर जिले में ग़रीबी, कर्ज, कुपोषण और मौत के चक्र का खुलासा करती हैं। इस जिले में 6 वर्ष की उम्र तक के चार बच्चे रोज़ाना मर रहे हैं। स्वास्थ्य विभाग के अनुसार 2006 में यहाँ इस आयुवर्ग की मृत्युदर प्रतिहज़ार 48 थी जो 2009 में बढ़कर 51 हो गई। ग़रीबी उन्मूलन और भूख निवारण के तमाम राष्ट्रीय कार्यक्रम, जिनके नाम पर सरकार ने 2010-11 के लिए 1.18 लाख करोड़ रुपये का बंदोबस्त किया है, बोलंगीर में अपनी जगह मौजूद हैं पर सरकार की कोशिशों में पड़ी दरारें भी लगातार चौड़ी हो रही हैं।

(साभार : हिन्दुस्तान, 29 मार्च 2010)

(सीमित प्रसार के लिए प्रकाशित)

पैरवी

जी-30, प्रथम तल, लाजपत नगर III,
दिल्ली-110024

फोन : 011-29841266, 65151897

ई-मेल : pairvidelhi@rediffmail.com

pairvidelhi1@gmail.com

वैबसाईट : www.pairvi.org

Book-Post

